ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 146-149
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-8, No.-II, Issues-IX YEAR- Dec-2017

अखण्ड भारत का स्वप्न और दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन

डॉ0 अशोक कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर– राजनीति विज्ञान विभाग, कुँवर सिंह पी0जी0 कॉलेज, बलिया (उ0प्र0), भारत

अखण्ड भारत का स्वप्न दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का महत्वपूर्ण आयाम है। दीनदयाल उपाध्याय ने ना सिर्फ अखंड भारत का स्वप्न देखा बल्कि इस सपने को साकार करने के लिए धरातल पर कार्य भी किया। उन्होंने अखंड भारतः ध्येय और साधन नाम से एक विस्तृत आलेख पांचजन्य पत्रिका में 24 अगस्त, 1953 को लिखा।

उन्होंने कहा – भारतीय जनसंघ ने अपने सम्मुख अखंड भारत का ध्येय रखा है। अखंड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं अपितु जीवन के भारतीय .ष्टिकोण का द्योतक है जो अनेकता में एकता के दर्शन करता है। अतः हमारे लिए अखंड भारत कोई राजनीतिक नारा नहीं, जो परिस्थिति विशेष में जनप्रिय होने के कारण हमने स्वीकार किया हो बल्कि यह तो हमारे संपूर्ण दर्शन का मूलाधार है। 15 अगस्त, 1947 को भारत की एकता के खंडित होने के तथा जन–धन की अपार हानि होने के कारण लोगों को अखंडता के अभाव का प्रकट परिणाम देखना पड़ा और इसलिए आज भारत को पुनः एक करने की भूख प्रबल हो गई है किंतु यदि हम अपनी युग–युगों से चली आई जीवन–ध ारा के अंतःप्रवाह को देखने का प्रयत्न करें तो हमें पता चलेगा कि हमारी राष्ट्रीय चेतना सदेव ही अखंडता के लिए प्रयत्नशील रही है तथा इस प्रयत्न में हम बहुत कुछ सफल भी हुए हैं।

उत्तरम् यत् समुद्रस्य दक्षिणं हिमवदगिरेः
वर्ष तद्भारतं नाम भारतीय यत्न संततिः

के रूप में जब हमारे पुराणकारों ने भारतवर्ष की व्याख्या की तो वह केवल भूमिपरक ही नहीं अपितु जनपरक और संस्. तिपरक भी थी। हमने भूमि, जन और संस्.ति को कभी एक–दूसरे से भिन्न नहीं किया अपितु उनकी एकात्मता की अनुभूति के द्वारा राष्ट्र का साक्षात्कार किया। अखंड भारत इस राष्ट्रीय एकता का ही पर्याय है। एक देश, एक राष्ट्र और एक संस्. ति की जो आधारभूत मान्यताएँ जनसंघ ने स्वीकार की हैं उनका सबका समावेश अखंड भारत शब्द के अंतर्गत हो जाता है। अटक से कटक, कच्छ से कामरूप तथा कश्मीर से कन्याकुमारी तक संपूर्ण भूमि के कण–कण को पुण्य और पवित्र ही नहीं अपितु आत्मीय मानने की भावना अखंड भारत के अंदर अभिप्रेत है। इस पुण्यभूमि पर अनादि काल से जो प्रथा उत्पन्न हुई तथा आज जो है उनमें स्थान और काल के क्रम से ऊपरी चाहे जितनी भिन्नताएँ रही हों किंतु उनके संपूर्ण जीवन में मूलभूत एकता का दर्शन प्रत्येक अखंड भारत का पुजारी करता है। अतः सभी राष्ट्रवासियों के संबंध में उसके मन में आत्मीयता एवं उससे उत्पन्न पारस्परिक श्रद्धा और विश्वास का भाव रहता है। वह उनके सुख–दुःख में सहानुभूति रखता है। इस अखंड भारत माता की कोख से उत्पन्न सपूतों ने अपने क्रिया–कलापों से विविध केंद्रों में जो निर्माण किया उसमें भी एकता का सूत्र रहता है। हमारी धर्म–नीति, अर्थ–नीति और राजनीति, हमारे साहित्य, कला और दर्शन हमारे इतिहास पुराण और आशय, हमारी स्मृतियों विधान सभी में देव पूजा के विभिन्न व्यवधानों के अनुसार बाह्य भिन्नताएँ होते हुए भी भक्त की भावना एक है। हमारी संस्.ति की एकता का दर्शन अखंड भारत के पुरस्कर्ता के लिए आवश्यक है। आम भारतीय के उधेड़बुन को दूर करते हुए उन्होंने कहा कि संपूर्ण जीवन की एकता की अनुभूति तथा उस अनुभूति के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करने के रचनात्मक प्रयत्न का ही नाम इतिहास है। गुलामी हमारी एकत्वानुभूति में सबसे बड़ी बाधा थी। फलतः हम उसके विरुद्ध लड़े। स्वराज्य प्राप्ति उस अनुभूति में सहायक होनी चाहिए थी। वह नहीं हुआ इसीलिए हम खिन्न हैं। आज हमारे जीवन में विरोधी–भावनाओं का संघर्ष हो रहा है। हमारे राष्ट्र की प्र.ति है 'अखंड भारत'। खंडित भारत वि.ति है। आज हम वि.त आनंदानुभूति का धोखा खाना चाहते हैं। किंतु आनंद मिलता नहीं। यदि हम सत्य को स्वीकार करें तो हमारा अंतःसंघर्ष दूर होकर हमारे प्रयत्नों में एकता और बल आ सकेगा।

आलोचकों पर अपनी राय रखते हुए उन्होंने कहा कि कई लोगों के मन में शंका होती है कि अखंड भारत सिद्ध भी होगा या नहीं। उनकी शंका पराभूत मनोवृत्ति का परिणाम है। पिछली अर्धशताब्दी के इतिहास तथा हमारे प्रयत्नों की असफलता से वे इतने दब गए हैं कि अब उनमें उठने की हिम्मत ही नहीं रह गई। उन्होंने सन् 1947 में अपने एकता के प्रयत्नों की पराजय तथा पृथकतावादी नीति की विजय देखी। उनकी हिम्मत टूट गई और अब वे उस पराजय को ही स्थायी बनाना चाहते हैं। किंतु यह संभव नहीं। वे राष्ट्र की प्र.ति के प्रतिकल नहीं चल सकते। प्रतिकूल चलने का परिणाम आत्मघात होगा। गत छह वर्षों की कष्ट परंपरा का यही कारण है।

अनुरूपी लेखक

वे विभाजन की विभीषिका से आहत थे। वे कहते हैं, सन् 1947 की पराजय भारतीय एकतानुभूति की पराजय नहीं अपितु उन प्रयत्नों की पराजय है जो राष्ट्रीय एकता के नाम पर किए गए। हम असफल इसलिए नहीं हुए कि हमारा ध्येय गलत था बल्कि इसलिए कि मार्ग गलत चुना। सदोष साधन के कारण ध्येय सिद्धि न होने पर ध्येय न तो त्याज्य ही ठहराया जा सकता है और न अव्यावहारिक ही। आज भी अखंड भारत की व्यावहारिकता में उन्हीं को शंका उठती है जिन्होंने उन दोषयुक्त साधनों को अपनाया तथा जो आज भी उनको छोड़ना नहीं चाहते।

उनका मानना था कि अखंड भारत के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मुसलिम संप्रदाय की पृथकतावादी एवं अराष्ट्रीय मनोवृत्ति रही है। पाकिस्तान की सृष्टि उस मनोवृत्ति की विजय है। अखंड भारत के संबंध में शंकाशील यह मानकर चलते हैं कि मुसलमान अपनी नीति में परिवर्तन नहीं करेगा। यदि उनकी धारणा सत्य है तो फिर भारत में चार करोड़ मुसलमानों को बनाए रखना राष्ट्रहित के लिए बड़ा संकट होगा। क्या कोई कांग्रेसी यह कहेगा कि मुसलमानों को भारत से खदेड़ दिया जाए? यदि नहीं तो उन्हें भारतीय जीवन के साथ समरस करना होगा। यदि भौगोलिक .ष्टि से खंडित भारत में यह अनुभूति संभव है तो शेष भू–भाग को मिलते देर नहीं लगेगी। एकता की अनुभूति के अभाव में यदि देश खंडित हुआ है तो उसके भाव से वह अब अखंड होगा। हम उसीके लिए प्रयत्न करें। उन्होंने परिस्थितियों का आकलन करते हुए कहा कि मुसलमानों को भारतीय बनाने के अलावा हमें अपनी तीस साल पुरानी नीति बदलनी पड़ेगी। कांग्रेस ने हिंदू मुसलिम एक्य के प्रयत्न गलत आधार पर किए। उसने राष्ट्र की और संस्.ति की सही एवं अनादि से चली आनेवाली एकता का साक्षात्कार किया तथा अनेकों को कृत्रिम तथा राजनीतिक सौदेबाजी के आधार पर एक करने का प्रयत्न किया। भाषा, रहन–सहन, रीति–रिवाज आदि सभी की कृत्रिम ढंग से रचना की। ये यत्न कभी सफल नहीं हो सकते थे। राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता का समन्वय संभव नहीं।

दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट शब्दों में कहा यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता जो हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्.ति जो हिंदू संस्कृति है उसका दर्शन करें। उसे मानदंड बनाकर चलें। भागीरथी की पुण्यधाराओं में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोलकर गंगा की धवल धारा में एकरूप हो जाएगी। किंतु इसके लिए भी भागीरथ के प्रयत्नों की निष्ठा 'एकंसद्विप्राः बहुधा वदन्ति', की मान्यता लेकर हमने संस्. ति और राष्ट्र की एकता का अनुभव किया है। हजारों वर्षों की असफलता अधिक है। उपाध्याय जी आशावाद का संचार करते हुए कहते हैं कि हमें हिम्मत हारने की जरूरत नहीं। यदि पिछले सिपाही थके हैं तो नए आगे आएँगे। पिछलों को अपनी थकान को हिम्मत से मान लेना चाहिए, अपने कर्मों की कमजोरी स्वीकार कर लेनी चाहिए लड़ाई जीतेंगे ही नहीं यह कहना ठीक नहीं। यह हमारी आन और शान के खिलाफ है, राष्ट्र की प्र.ति और परंपरा के प्रतिकूल है।

उपर्युक्त विचारों के आलोक में हम देखते हैं कि दीनदयाल उपाध्याय के अखंड भारत का चिंतन राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया से होकर गुजरता है। तब सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि आखिर राष्ट्र क्या है? राष्ट्र न तो किसी भूमि का बेजान टुकड़ा होता है कि जिस पर किसी वस्तु का निर्माण किया जा सके। राष्ट्र किसी भवन का नाम या नक्शा भी नहीं जिसकी मरम्मत या फिर जिसके अनुसार किसी तरह का कोई निर्माण कार्य किया जा सके। राष्ट्र तो एक भावना हुआ करती है जो व्यक्ति या व्यक्तियों को किसी भूभाग के कण – कण से प्रत्येक जड़ – चेतन, प्राणी और पदार्थ से जोड़े रखती है।

यह भावना तभी सजीव – सप्राण रह पाती है जब उस भावना के अनुरूप एक विशिष्ट भूभाग से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति में एकता का भाव और संगठन हो। इसके पश्चात ही राष्ट्र निर्माण संभव हो पाता है। राष्ट्र निर्माण का एक अर्थ होता है एकता और संगठन का अनवरत निर्माण एवं विकास। दूसरा अर्थ होता है वही एकताबध्द एवं संगठित समाज जिस भूभाग पर निवास कर रहा है उसका समय एवं युग परिस्थितियों के अनुसार विकास कार्य, उन्नति एवं उत्कर्ष के उपाय करना।

इस तरह जन–समुदाय की एकता ही वह मूल आधार है जिस पर भावना के स्तर पर राष्ट्रीयता और व्यवहार के स्तर पर राष्ट्र के .श्य स्वरुप भूभाग अर्थात देश का नव निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार से राष्ट्र निर्माण के लिए भावनात्मक स्तर पर एकता व संगठन के माध्यम से युगीन परिस्थितियों के अनुरूप राष्ट्र का संरचनात्मक विकास किया जा सकता है। और इस संरचनात्मक विकास और संगठन के लिए विचारधाराएं आधार के रूप में कार्य करती हैं। विचारधारा के अभाव में राष्ट्र निर्माण को निश्चित दिशा नहीं प्राप्त होती है।

प्राचीन काल से ही विचारधाराओं ने राष्ट्र निर्माण की संकल्पना को उर्वर जमीन प्रदान की है। राष्ट्र निर्माण में विचारधाराओं की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। यदि हम पंडित दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन और विचार का विश्लेषण करें तो एक संगठित और विकसित राष्ट्र की रूपरेखा का दर्शन होता है। वर्तमान द्वंद्व और संघर्ष के युग में विश्व भर में

संगठित, शांतिपूर्ण जीवन के संदर्भ में व्यापक स्तर पर विमर्श हो रहा है तो दीनदयाल उपाध्याय के विचार ज्यादा उपयोगी और प्रासंगिक जान पड़ते हैं। दीनदयाल उपाध्याय सिर्फ राजनेता ही नहीं बल्कि उच्च कोटि के चिंतक, विचारक और लेखक भी थे। उनके विचार समष्टिवादी .ष्टिकोण पर आधारित हैं जिनका उद्देश्य लोक कल्याण है। यदि हम पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का क्रमिक रुप से विश्लेषण करें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि कैसे उनके विचार या दर्शन के आधार पर राष्ट्र निर्माण किया जा सकता है।

दीनदयाल उपाध्याय का स्पष्ट मानना था कि किसी भी राष्ट्र के निर्माण के लिए जो भी सिद्धांत अपनाया जाए वह उस राष्ट्र की संस्.ति और परिस्थिति के अनुकूल हो। भारत के संदर्भ में उन्होंने समाजवाद और साम्यवादी सिद्धांत को अव्यावहारिक बता कर खारिज किया। उनका मानना था कि ये विचारधाराएं भारतीय संस्.ति के प्रतिकूल और अव्यावहारिक हैं। भारत के पुनर्निर्माण के लिए भारतीय दर्शन ही कारगर वैचारिक उपकरण के रुप में कार्य कर सकता है। दीनदयाल उपाध्याय ने मानवमात्र से जुड़े लगभग सभी प्रश्नों की समाधान युक्त विवेचना अपने वैचारिक .तियों में की है। चाहे प्रश्न राजनीति का हो या अर्थव्यवस्था का अथवा समाज की विविध जरूरतों का उनके विचार जीवन व राष्ट्र से जुड़े लगभग सभी प्रश्नों पर सारगर्भित हल प्रस्तुत करते हैं।

उपाध्याय जी के चिंतन और दर्शन ने जीवन व राष्ट्र के अनछुए पहलुओं को भी उजागर किया है। जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी राष्ट्र के व्यक्तियों के व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के माध्यम से ही राष्ट्र निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए मानव के समग्र विकास पर उनका चिंतन सर्वाधिक उपयोगी और प्रासंगिक जान पड़ता है। उन्होंने एकात्म मानववाद का जो दर्शन प्रतिपादित किया वह भारतीय ज्ञान–परंपरा के तत्व चिंतन के सार को प्रस्तुत करता है। दीनदयाल जी कहते हैं कि सृष्टि का स्वरुप बाहर से चाहे कितना ही विविधतापूर्ण हो लेकिन वह आंतरिक रुप से एकात्म स्वरुप धारण किए हुए है। प्र.ति के विविध रुप में परस्पर सहयोग, सामंजस्य, परिपूर्णता का भाव निहित है। उनके अनुसार व्यक्ति और समाज में कोई भी विरोधाभास नहीं है। उपभोक्तावादी संस्.ति की आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि प्र.ति और जीवन सिर्फ उपभोग के लिए नहीं है बल्कि सब के सहयोग और सबके विकास के लिए है। परस्पर सहयोग के माध्यम से ही जीवन व राष्ट्र निर्माण की अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया जा सकता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में समाज के अंतिम पंक्ति में खड़ा अंतिम व्यक्ति का उत्थान ही उपाध्याय जी के एकात्म मानववाद का लक्ष्य है और यही उनके अंत्योदय दर्शन का सार भी।

दीनदयाल उपाध्याय ने पश्चिमी 'पूंजीवाद व्यक्तिवाद' एवं 'मार्क्सवादी समाजवाद' दोनों का विरोध किया लेकिन उन्होंने राष्ट्र निर्माण के लिए आधुनिक तकनीक एवं पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान और विज्ञान को आवश्यक बताया। उनके एकात्म मानववाद का उद्देश्य एक ऐसा 'स्वदेशी सामाजिक – आर्थिक मॉडल' प्रस्तुत करना था जिसके विकास के केंद्र में मानव हो, वैश्वीकरण की प्रक्रिया के पश्चात जहां विकास के अन्य मॉडल प्रासंगिकता खो रहे हैं उनका यह स्वदेशी मॉडल राष्ट्र निर्माण के लिए पूरी तरह प्रासंगिक है, जो कि पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान का समन्वय करते हुए राष्ट्र की सांस्कृतिक अनुकूलता धारण करता है।

दीनदयाल उपाध्याय पूंजीवाद एवं समाजवाद के बीच की राह पर चलने के पक्षधर थे। उनका मानना था कि उपर्युक्त विचारधाराओं में विभिन्न प्रकार के अवगुण हैं। उपाध्याय के अनुसार पूंजीवादी और समाजवादी विचारधाराएं केवल मानव के शरीर एवम् मन की आवश्यकताओं की पूर्ति पर विचार करती है जो कि उपभोगवादी संस्.ति को बढ़ावा देती है। उनका मानना था कि मानव के संपूर्ण विकास के लिए भौतिक विकास के साथ–साथ आत्मिक विकास भी जरूरी है। और इस आत्मिक विकास के माध्यम से ही सामाजिक समरसता हासिल की जा सकती है जो कि राष्ट्र निर्माण का सर्वाधिक आवश्यक तत्व है। उन्होंने एक वर्गहीन, जातिविहीन और संघर्ष मुक्त समाज व्यवस्था की कल्पना की थी। जो कि सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र निर्माण की सीढ़ी है। यदि हम समकालीन भारतीय समाज की परिस्थितियों को देखें तो निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत उनके एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता दिखाई पड़ती है। वर्तमान समय में भारत की एक बड़ी आबादी गरीबी व भुखमरी की समस्या से जूझ रही है। भारत में स्वतंत्रता पश्चात जो भी माडल अपनाया गया उसके आशानुरूप परिणाम नहीं मिले। अतः वर्तमान समय में एक ऐसे विकास मॉडल की आवश्यकता है जो एकी.त और संधारणीय हो। एकात्म मानववाद ऐसा ही दर्शन है जो अपनी प्र.ति में एकी.त एवं संधारणीय है।

एकात्म मानववाद का उद्देश्य व्यक्तियों एवं समाज की आवश्यकता को संतुलित करते हुए प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करना है। वर्तमान समय में जहां प्रा.तिक संसाधनों की लूट मची हुई है दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन संतुलित उपभोग का समर्थन करता है। एकात्म मानववाद ना केवल राजनीतिक बल्कि आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र एवं स्वतंत्रता को भी बढ़ाता है। यह सिद्धांत विविधता को प्रोत्साहन देता है अतः भारत जैसे विविधतापूर्ण देश

के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त है। एकात्म मानववाद का उद्देश्य प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करना है एवं अंत्योदय अर्थात समाज के निचले स्तर पर स्थित व्यक्ति के जीवन में सुधार करना है। इस प्रकार यह दर्शन भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए सबसे आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं. दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र जीवन की अवधारणा
2. पं. दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र जीवन की दिशा
3. गुरु गोलवरकर, समग्र दर्शन
4. पं. दीनदयाल उपाध्याय, पॉलिटिकल डायरी
5. दीनदयाल उपाध्याय, भारतीय अर्थ–नीति विकास की एक दिशा
6. पं. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद दर्शन
7. पं. दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र चिंतन
8. पं. दीनदयाल उपाध्याय, समाज विज्ञान की देन
9. Deendayalupadhyay-org
10. Lecture & 1st] on April 22nd 1965
11. Lecture & 2nd] on April 23rd 1965
12. Lecture & 3rd] on April 24th 1965
13. Lecture & 4th] on April 25th 1965
14. Presidential Speech at Calicut in Kerala in December 1967

*****